आग का आइना

केदारनाथ अग्रवाल

आग का आईना

केदारनाथ अग्रवाल

साहित्य भंडार
इलाहाबाद 211 003

I S B N : 978-81-7779-194-X

❁

प्रकाशक

साहित्य भंडार

50, चाहचन्द, इलाहाबाद-3

दूरभाष : 2400787, 2402072

❁

लेखक

केदारनाथ अग्रवाल

❁

स्वत्वाधिकारिणी

ज्योति अग्रवाल

❁

संस्करण

साहित्य भंडार का

प्रथम संस्करण : 2009

❁

आवरण एवं पृष्ठ संयोजन

आर० एस० अग्रवाल

❁

अक्षर-संयोजन

प्रयागराज कम्प्यूटर्स

56/13, मोतीलाल नेहरू रोड,

इलाहाबाद-2

❁

मुद्रक

सुलेख मुद्रणालय

148, विवेकानन्द मार्ग,

इलाहाबाद-3

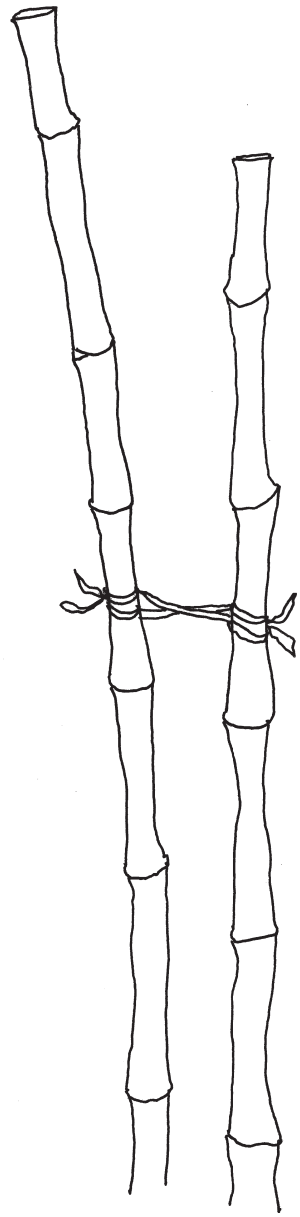

मूल्य : 125.00 रुपये मात्र

आग का आईना

प्रकाशकीय

इस संकलन का प्रकाशन 'साहित्य भंडार' के प्रथम संस्करण के रूप में सम्पन्न हो रहा है। केदारजी के उपन्यास 'पतिया' को छोड़कर, उनके शेष समस्त लेखन को प्रकाशित करने का गौरव भी 'साहित्य भंडार' को प्राप्त है। केदारनाथ अग्रवाल रचनावली (सं० डॉ० अशोक त्रिपाठी) का प्रकाशन भी 'साहित्य भंडार' कर रहा है।

एक तरह से केदार-साहित्य का प्रकाशक होने का जो गौरव 'साहित्य-भंडार' को मिल रहा है उसका श्रेय केदार-साहित्य के संकलन-संपादक डॉ० अशोक त्रिपाठी को जाता है उसके लिए 'साहित्य-भंडार' उनका आभारी है। यह गौरव हमें कभी नहीं मिलता यदि केदार जी के सुपुत्र श्री अशोक कुमार अग्रवाल और पुत्रवधू श्रीमती ज्योति अग्रवाल ने सम्पूर्ण केदार-साहित्य के प्रकाशन का स्वत्वाधिकार हमें नहीं दिया होता। हम उनके कृतज्ञ हैं।

भाई आर. एस. अग्रवाल ने इस संकलन को कलात्मक सज्जा प्रदान किया इसके लिए उनका आभार।

सतीशचन्द्र अग्रवाल
विभोर अग्रवाल
2009

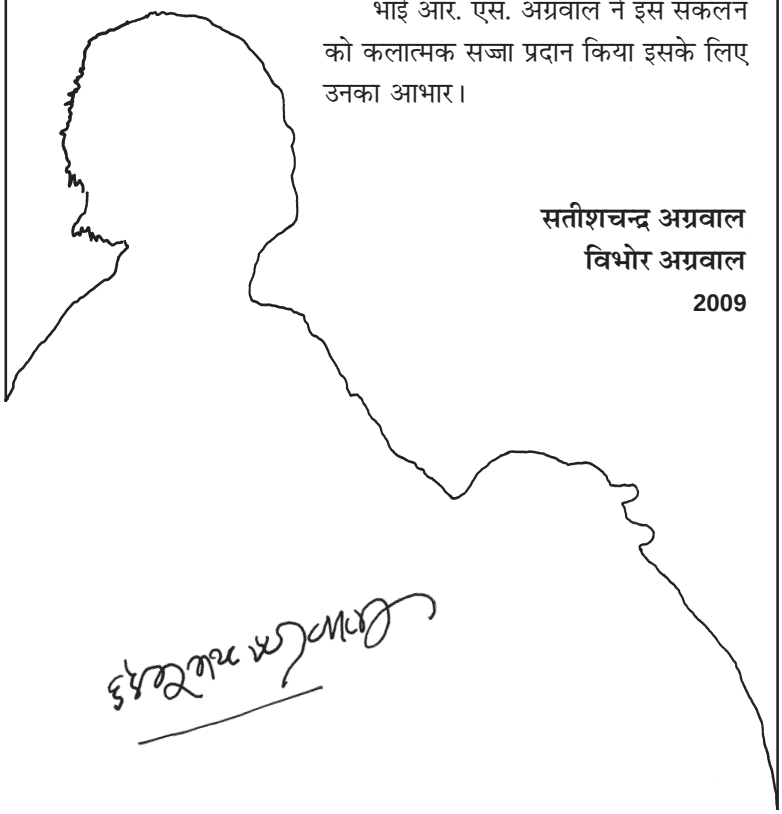

भूमिका

इधर की मेरी कविताओं का यह संकलन 'आग का आईना' है।

इसकी कविताएँ पहले की मेरी पुरानी कविताओं से बिलकुल भिन्न हैं। दोनों के बीच की दूरी मेरे पहले के केदार और अब के केदार के बीच की दूरी है। यह **दूरी मेरे दोनों अस्तित्वों को एक क्रमिक विकास से जोड़े है।** मेरे विकास की यह यात्रा युग और यथार्थ के पकड़ की यात्रा है। यह पकड़ न किताबी है—न बेबुनियादी—न राजनयिक —न अराजकतावादी। तभी इस पकड़ में पड़ कर भाषा भूपायित नहीं हुई—बल्कि अपनी प्रेषणीयता को बरकरार रख सकी है। अलावा इसके, कथ्य में जान पड़ी है। इस पकड़ से। शिल्प यथानुरूप कलात्मक बना है ऐसी पकड़ से।

हरेक कविता वस्तु है—संवेदनशील इकाई है—यह इकाई जितनी मेरी है उतनी ही दूसरों की है।

हरेक इकाई मूर्त जगत की असम्बद्धता में सम्बद्धता स्थापित करती है। यह सम्बद्धता मैंने आत्मपरक होकर अन्दर-ही-अन्दर अपने को मथ कर, तनाव की स्थिति में गुमसुम होकर, अपने को विवेक से जोड़ कर, क्रमशः उबर कर, रचना-प्रक्रिया के दौर से गुजर कर, पाये हुए को कथ्य और शिल्प में ढाल कर, भाषा इकाई बना कर स्थापित की है।

भाषा की इकाई बन कर प्रत्येक कविता मूर्त जगत् की वस्तुवत्ता का मानवीय संस्करण हो गई है। मेरे अन्दर जो ''मैं'' है वह चेतन ''मैं'' है। ''मैं'' की चेतना आदिम मनुष्य की चेतना नहीं है। वह चेतना ''मैं'' ने मूर्त जगत् की वस्तुवत्ता के द्वन्द से बनाई, बढ़ाई, और दूसरों के हित में लगायी है। यह विकास का पथ—मेरे ''मैं'' अकेले नहीं चला—न अकेला जिया है—न अकेले मरना चाहता है। मेरा ''मैं'' आदमी का ''मैं'' है और मैं इसे आदमी के सुख-दुख और द्वन्द का ''मैं'' समझता हूँ। मेरी प्रत्येक कविता में यही ''मैं'' है।

मेरी इन कविताओं में अजनबीपन नहीं है इसलिए कि मैं अपने देश में अजनबी नहीं हुआ। अजनबी होना आदमी न होने की निशानी है। आदमी न होने का मतलब है अपने आदमियों को न समझना—अपने युग के यथार्थ को न समझना—और विसंगतियों में रह कर आदमी होने से इनकार करना। मैं जानता हूँ कि दुनिया में शायद ही ऐसा कोई देश हो जहाँ किसी-न-किसी रूप में कुछ-न-कुछ विसंगति न हो। तब फिर मैं अपने देश की विसंगति से भाग कर दूसरे देश की ओर क्यों उन्मुख होऊँ और अपने को अजनबी कह-कह कर कविताओं में अकबकाता रहूँ। निश्चय ही देश विसंगतियों को दूर करेगा—और उसे दूर करने में हरेक देशवासी को योग देना होगा।

कवि कोई अपवाद नहीं है। इसलिए कवि का भी वही धर्म और कर्म है जो एक वैज्ञानिक का—एक राजनैतिक का—एक अर्थशास्त्री का—और एक समाजशास्त्री का। समस्याएँ सुलझाना जरूरी है। कवि सुलझाने में योग नहीं देता—मूल कारणों को नहीं देखता—उपचार करने में सहयोग नहीं देता—कटा-कटा रहता है और अपने बुने जाले में फँसता रहता है इसलिए वह अजनबी महसूस करता है। ऐसा न होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त और भी बहत-कुछ कविता के संबंध में कहना था, पर यहाँ न कहूँगा। वह सब अन्यत्र अपनी किताब 'समय-समय पर' में कह रहा हूँ जिसमें कविता को लेकर विश्लेषण किया गया है।

मैं सर्वश्री अजित पुष्कल, कृष्ण मुरारी पहाड़िया, अप्रसाद दीक्षित, भगवान दास गुप्त, जगदीश राजन, श्री शिव कुमार सहाय व धारा प्रेस के श्री श्रीप्रकाश का हृदय से कृतज्ञ हूँ। इन लोगों ने कई तरह से सहयोग दिया है।

—केदारनाथ अग्रवाल

अनुक्रम

कविता का शीर्षक या पहली पंक्ति	रचना-तिथि	पृष्ठांक
कहाँ नहीं पड़ती है किस पर	25-9-1960	11
सम्भोग की मुद्रा में	30-9-1960	13
पीली धोती	30-9-1960	13
उठाकर पटक दिया है तुमने	30-9-1960	14
न हटा	3-2-1964	15
खटखुट	5-4-1964	15
मैंने अपराध किया है	30-5-1964	16
मौन	18-11-1964	16
छूँछे घड़े	6-3-1965	17
अपने जन्म दिन पर	6-7-1965	18
जाल और नकाब के बीच	14-7-1965	21
चम्मचों से नहीं	15-7-1965	25
मन की गठरी में बँधा नगर का नैतिक बल	13-8-1965	26
भेड़िये-सा	18-8-1965	27
मंदिरों में नहीं	28-8-1965	27
आग चल रही है	28-8-1965	28
कवि मुक्तिबोध की मृत्यु के बाद	14-9-1965	29
प्रसव-पीड़ा से विकल है	10-9-1965	31
समय का शव	27-9-1965	32
लँगड़े की दुनिया भी लँगड़ी है	6-10-1965	33
लघुत्तम है उसका अस्तित्व	6-10-1965	33
पुल टूटा	6-10-1965	34

उजाला	6-10-1965	34
अनुत्तरित मौन	13-10-1965	35
प्रलम्बित खड़े हैं	14-10-1965	36
आवरण है	24-10-1965	36
जो खुल गया है	25-10-1965	36
मैंने देखा	25-10-1965	37
पहाड़ पर खड़ी है	25-10-1965	37
गंध में	13-12-1965	38
बाहों में बँधी वह	30-4-1966	38
विद्वान अँधेरा	27-7-1966	39
मैं उसे खोजता हूँ	31-10-1966	39
जीकर भी	31-10-1966	40
न इश्क	28-2-1967	41
सेब में घुसा चाकू	28-2-1967	41
तरबूज	28-3-1967	42
सुबह फक है	28-7-1967	42
चरित्र सब चालते हैं	14-9-1967	43
ज्यामितिक जीवन	17-10-1967	44
मौत को पढ़ रही है जिन्दगी	19-10-1967	45
कर्ज का पहाड़	19-10-1967	45
है	20-10-1967	46
चिलम में उगा	21-10-1967	46
सब से जुदा	22-10-1967	47
नंगा न हुआ आदमी बुरा हुआ	26-10-1967	47
मैं हूँ	9-11-1967	48
आग लेने गया है	29-12-1967	48
न धूप को है	27-1-1968	49
न डूबे हैं	3-3-1968	50
दल बदल बादल	11-3-1968	50

सिर के अंदर	11-3-1968	51
नदी है	2-4-1968	52
नदी में डूबे नगर के पाँव	2-4-1968	52
न देखा था	19-3-1968	53
मकान ने कहा मकान से	6-4-1968	54
अब	13-5-1968	54
खफ्त है मुझे	19-7-1968	54
खबर है	10-8-1968	55
सिर के ऊपर	15-8-1968	56
कल की किताब	21-10-1968	57
मच्छर	2-11-1968	58
श्री श्रीखंडे के प्रति	4-11-1968	58
अँगूठा खड़ा है	12-11-1968	61
पस्त हो गयी है	25-11-1968	62
जेब कटरे उपन्यास	26-11-1968	62
कमासिन—मेरा गाँव	12-12-1968	63
दाल-भात	27-1-1969	66
सिपाही का डंडा	27-1-1969	67
कर्ज...कर्ज...कर्ज	27-1-1969	67
गधों के पैने सींग	27-1-1969	68
औरत की देह	31-1-1969	69
शब्द हो गये हैं नंगे	31-1-1969	70
तू ने जो गरमाई दी है	7-2-1969	70
कुता, कुत्ता है	9-2-1969	71
यहाँ—इस देश में	9-2-1969	72
बीच में खड़ा पहाड़	9-2-1969	72
बढ़ गया है	4-1-1969	72
हाथ के पेड़	4-1-1969	73
देखने को बहुत कुछ दीख रहा है	19-2-1969	74

दूर कटा कवि	2-3-1969	75
तुम नहीं छोड़ते भोग-सम्भोग	6-3-1969	76
दर्द के सिर में	9-3-1969	76
पैसा है मेरा देश	12-3-1969	77
मैं तो एक पहाड़ हूँ	14-3-1969	78
सब के पास है	24-3-1969	79
रिन	24-3-1969	79
हरेक बंद है अपनी गली में	25-3-1969	80
लोग और रोग	7-4-1969	80
स्वधर्म हो गया है वेतन का बचाना	15-4-1969	81
हमने	24-4-1969	82
दिल में दिल्ली	24-4-1969	83
सत्य	24-4-1969	83
हम	4-5-1969	84
बूँद से बूँद		85
न्याय की लकीर		86
फुर्र		86
त्रास हो या संत्रास		86
ऊँघती आग		87
न पथ है—न पंथी		87
घुन के घाव		88
हताहत हो गयी—अंधकार की सेवा		89
वह जो है		89
उत्तरी वियतनाम		90
नदी अब भी जवान है		92
आग का आईना		95

●●

कहाँ नहीं पड़ती है किस पर

कहाँ नहीं पड़ती है किस पर
काल के मौन पंखों की बर्बर मार?

सागर हो जाया करता है उद्विग्न
खौलने लगा करता है उसका गुरु गम्भीर अस्तित्व
और वह उड़ने लगा करता है भाप बनकर ऊपर,
बदल-बदल जाया करता है क्षण-पर-क्षण उसका स्वरूप

पृथ्वी हो जाया करती है अचेत
पहाड़-से खड़े-खड़े बड़े-बड़े से उसके हाड़
नत हो जाया करते हैं अवसन्न त्वचाहीन

बड़ी-बड़ी नदियों की उसकी बड़ी-बड़ी आतें
परित्यक्त केंचुलों की तरह हो जाया करती हैं व्यर्थ

आकाश हो जाया करता है धुआँ-धुंध,
दिशाओं की जेल,
मूर्छना की तरह फैला भयावना, अछोर, निर्दीप

आग हो जाया करती है कुंठित कृपाण,
निस्तेज, भूमि पर पड़ी, बल-विक्रम विहीन
मरे योद्धाओं के बगल में

फिर भी सागर, पृथ्वी, नदियाँ, आकाश
और आग, मार-पर-मार के बाद भी, समाप्त नहीं हुए
और अब भी लहराता है सागर भरपूर जवान
अब भी फल फूल से भरी रहती है पृथ्वी छविवान
अब भी नये-नये चाँद और सूरज उगाया करता है आकाश
अब भी आग मशाल जलाया करती है
आदमियों की,
युग की, सत्य की टोह के लिए,
विचार को दिशा देने के लिए।

25-9-1960

सम्भोग की मुद्रा में [1]

सम्भोग की मुद्रा में
नग्न खड़े हैं
खुले आम
नर और नारी
एक दूसरे से लिप्त
परदा तोड़े
नये युग में
नयी सन्तान
पैदा करने के लिए

30–9–1960

पीली धोती

पीली धोती
नीली चोली
सिर से लटकी लम्बी बेनी
तुम हो सरसों
तुम हो सागर
तुम हो रात

30–9–1960

---

1. ला विये : पिकासो का चित्र

उठाकर पटक दिया है तुमने

उठाकर पटक दिया है तुमने
मुझ पर धरे अंधकार को पहाड़ के नीचे
और वह हो गया ध्वंस, चकनाचूर
और मैं
हो गया हूँ मुक्त–पूरा मुक्त–
भीतर भी भारहीन–
बाहर भी भारहीन–
स्वच्छंद निकल पड़ने के लिए,
रंगीन फौवारे की तरह उछल पड़ने के लिए
मैदान में मोर की तरह नाच उठने के लिए
अब मैंने जाना
सबेरे की सुनहरी किरन!
तुम्हें मुझसे प्यार है

30–9–1960

न हटा बीच में खड़ा समय

न हटा
बीच में खड़ा समय
न मिले हम और तुम
समय से बाहर
एक दूसरे में समाये
अस्तित्व में अघाये

3–2–1964

खटखुट खटखुट

खटखुट
खटखुट
कर रहा है काल
मेरे कान के पास
जमीन छोड़कर
जल्द चलने के लिए
धक्का दे रहा है
उसे
मेरा एक बाल
मुझसे अलग रहने के लिए
तमाम उम्र
इंतजार में खड़े रहने के लिए

5–3–1964

मैंने अपराध किया है

मैंने अपराध किया है
चाँद को चूमकर लजा दिया है
दंड दो मुझे
केश-कुंज के तमांध में
कैद रहने का

30-5-1964

मौन

मौन
चल रहा है
वंचक चाँदनी में
तुम्हारे चम्पक सौंदर्य के साथ
सलज्ज गोपनीयता के पग से

18-11-1964

छूँछे घड़े

छूँछे घड़े
बाट के टूटे
ऊँचे नहीं–
पड़े हैं नीचे
कभी जिन्होंने
पौधे सींचे
अब
मनचीते
हाथ गहे के
वे दिन बीते
अंक लगे के
शीश चढ़े के
सपने रीते

6–3–1965

अपने जन्म-दिन पर

पचास के पार–
साठ की ओर पहुँच गया हूँ मैं
रक्त की चाप छोड़कर पीछे
आग और आलोक को लिये आगे–
अंधकार को ललकारते।
उम्र से नहीं
यश और चिन्ता से सफेद हो गये हैं मेरे बाल
ऐ मेरे दोस्त!
बहुत धूप खायी है मैंने
जैसे और लोग खाते हैं मलाई की बर्फ।
मेरा सिर
बहुत छोटा है
नारियल तो नहीं–
यह आदमी का सिर है
जो लट्ठ खाकर नहीं टूटा
ऐ मेरे दोस्त।
मेरा सिर आपका सिर है
मैं इसे आदमी के स्वाभिमान के लिए ऊँचा रक्खूँगा
गाँव अब भी मुझे बुलाता है

रेडियो की तरह बज उठता हूँ मैं
उसकी पुकार पर
लेकिन जा नहीं पाता
पेट में कैद हूँ।

शहर–
यह तो मुझे रोटियाँ देता है
और
केन का दमदार पानी देता है
और
मैं
इसके बदले में
उसे अपनी उम्र देता हूँ
और कविता देता हूँ
मैं कृतज्ञ हूँ अपने शहर का।
न सही मेरे पास
मकान–
रुपया बनाने की दुकान
न सही
मेरे दोस्त!
न सही
यह सब कुछ
न सही
मेरे पास

तुम तो हो
मेरे दोस्त! मेरे पास–
मेरे हमदर्द इंसान!

मुझे इंसान प्यारा है
इंसान का दिल प्यारा है
बहुत प्यारा है
बहुत प्यारा है
बजाय
धन-दौलत और मकान-दुकान के!
मेरे दोस्त
मैं अभी बहुत साल जिऊँगा
और मरा भी तो
तुम्हारी उम्र में लगातार जिऊँगा
पीढ़ी-दर-पीढ़ी
इसी हिन्दुस्तान में रहूँगा।

6-7-1965

जाल और नकाब के बीच

दुख
मेरे सिरहाने खड़ा है
काल का जाल लिये :
सुख
मेरे पैताने खड़ा है–
नकाब ओढ़े
मुझसे मुँह छिपाये।
मैं
बरबस आ गयी रात में
नींद से झगड़ता हूँ
किन्तु
मुझे नहीं मिलती नींद–
न सहानुभूति
और मैं
जाल और नक़ाब के बीच
पड़ा रह जाता हूँ
तिलझता!

फिर सबेरा होता है
फिर मेरे सुनसान में सूरज कदम रखता है
फिर और फिर

कर्म मुझे ढकेल देता है
न खतम होने वाली सड़क पर
तमाम दिन किर्रा मारकर जीने के लिए!

भीड़ मुझे खा जाती है
और मैं
पेट में उसके
अंधों से मिलता हूँ–
जिन्हें पहचानता हूँ :
जो मुझे नहीं पहचानते :
गूँगों से मिलता हूँ :
बहरों से मिलता हूँ :
भूखों से मिलता हूँ :
लेकिन
सब छूट जाते हैं
पीछे !-

भद्रगण–
घूरते निकल जाते हैं मुझे :
न पास आते हैं वे–
न मैं उनके पास जाता हूँ।

मैं नहीं जानता :
मैं क्या हूँ?–
और कहाँ जा रहा हूँ?–
लेकिन हूँ–

और वे हैं
इस दृश्य में कहीं
जो मेरी समझ में नहीं आ रहा!

बस शाम होते-न-होते
मुझे भारी लगने लगता है मेरा लिबास
और
मुझ पर सवार हो जाता है
रात की दुनिया का कालापन!

मैं घर पहुँचता हूँ
वहाँ बैठे मिलते हैं मुझे
दुख
और
सुख
मेरे दोनों साथी!
एक अपना जाल लिये :
एक अपनी नकाब लिये।
मैं फिर नींद से झगड़ने लगता हूँ
फिर नहीं मिलती मुझे नींद
—न नींद की सहानुभूति!

मैं नहीं जानता
यह जीवन क्या है—
जिसे मैं जी रहा हूँ!
फिर भी मैं जी रहा हूँ यह जीवन—

जमीन का जीवन :
कर्म का जीवन :
भीड़ का जीवन :
दिन का जीवन :
रात का जीवन :
दुख के साथ :
सुख के साथ।

मैं
        इस जीवन से
        निजात नहीं चाहता
न अपने दोनों साथियों को छोड़ना चाहता हूँ
कि मैं
        कहीं अकेला
        किसी शून्य में लोप होऊँ।

14–7–1965

चम्मचों से नहीं

चम्मचों से नहीं
आकंठ डूबकर पिया जाता है
दुख को दुख की नदी में
और तब जिया जाता है
आदमी की तरह आदमी के साथ
आदमी के लिए

15–7–1965

मन की गठरी में बँधा नगर का नैतिक बल

मन की गठरी में बँधा नगर का नैतिक बल
खुल गया है अब
सामूहिक प्रदर्शन के रूप में
इस समय जब–शाम को–
पिछड़े प्रदेश का गुमसुम इतिहास
मर्माहत युवकों के साथ,
सड़क पर कड़ककर,
आक्रोश और आग के डग धरता
अनाचार और अत्याचार की पीठ कुचलने लगा है
और चतुर्दिक
चाबुक और चुनौती से–
चोट-पर-चोट चटाचट करने लगा है
और नय का भूडोल
अनय का भूगोल बदलने लगा है।

मंच से भाषण क्या होने लगा है
शोध का लावा निकलकर बहने लगा है
दुष्ट का दल उस लावा में दहने लगा है
सूर्य सो गया है सुबह तक के लिए
अंधकार को देकर अपना राज
किन्तु इस निदर्शन में भी
यह प्रदर्शन सजीव है
और अब भी
मेरी आँखों में साकार है।

13-8-1965

भेड़िये-सा

भेड़िये-सा
भयंकर हो गया है
यथार्थ
न कोई बचाव
न कोई सुझाव

18-8-1965

मंदिरों में नहीं

मंदिरों में नहीं—
देवियों के दर्शन
दुकानों में होते हैं
नाच-गानों में होते हैं

28-8-1965

आग चल रही है

आग चल रही है
जंगल में प्रकाश के साथ
दोनों हम उम्र—दोनों जवान
वन के बाँस
पथ के पेड़
जल रहे इनसे
खड़े हैं

28–8–1965

कवि मुक्तिबोध की मृत्यु के बाद

जब तक जिया
अपने लिये नहीं
कृतित्व के लिये जिया
फिर भी हमने
न उसे
न उसके कृतित्व को
आगे किया।

जो कुछ उसने दिया
जी में जीवन घोलकर दिया
न कुछ लिया
न अपने लिये किया
विष हो या रस
उसने पिया
जो दूसरों ने न पिया

ऐसे मर गया वह
न मरने की उम्र में
जैसे कोई नहीं मरा

बाद वफात
हमने उसे कंधा दिया।
जमीन से उठाकर
उसे ऊपर किया
ऐसे रोये

जैसे बादल रोये
जब भस्म होकर
वह चल दिया

अब हमने
पश्चाताप किया
उसकी किताब छापी
गद्य और पद्य में उसे खोजा
हमने उसे पाया—
स्थान दिया
पत्रिकाओं ने उसे
क्रूस पर टाँग दिया
बड़ा नाम किया
अपना और उसका!

हमने
अब कहा उसको :
युग-बोध का मसीहा :
यथार्थ-दृष्टा :
काव्य में नये का सृष्टा :
अद्वितीय कलाकार :
अपूर्व रचनाकार :
अलमबरदार :
क्योंकि वह नहीं है :
मरे की प्रशस्ति
उसकी और हमारी प्रशस्ति है
वाह रे हम
और हमारा गम
फरेब पर फिदा है मातम

14-9-1965

प्रसव-पीड़ा से विकल है

प्रसव-पीड़ा से विकल है
अजन्मे सूर्य के पहले की लालिमा

कठोर सत्य का पहाड़
अपाठ्य शिला-लेख की तरह अभाष्य है
इंद्रियों को संवेदन अप्राप्य है

आकाश का नीलम आश्चर्य
अब भी प्रकाशित नहीं हुआ—
न उपलब्ध हुआ

नदी में
झिलमिल बन है
हो-न हो का विस्तार है
बिम्ब-हीनता का विचार है

वायु में
चलने-न-चलने का बोध है
वायु की लय अमूर्त है
विराम में बंदी पेड़
तर्क की खोज में खड़े हैं

कुछ है
जो होगा
अनदेखा दृश्य
अब देखा होगा

10-9-1965

समय का शव

समय का शव
न आसमान उठाता है
न जमीन उठाती है
न वायु
न उसका बेटा आज उठाता है
मगर
इंसान का मारा समय
इंसान उठाता है
पीठ पर लिये-लादे
न फेंकता है
न फेंकने देता है
कातिल
किसी और को कातिल
बताता है

27-9-1965

लँगड़े की दुनिया

लँगड़े की दुनिया भी लँगड़ी है
जिंदगी एक कड़वी ककड़ी है

6-10-1965

लघुत्तम है उसका अस्तित्व

लघुत्तम है उसका अस्तित्व
जिसे कोई नहीं जानता
महत्तम है उसकी गरीबी
क्षितिज तक फैली छायाओं के समान
जिसे सब जानते हैं
चलते और कुचलते

6-10-1965

पुल टूटा

पुल टूटा
इस पार बचपन
उस पार यौवन
नदी भयंकर गहरी
बिना नाव के
अब डूबी अब डूबी
ममता

6–10–1965

उजाला

उजाला
इस जमाने का जाला है
आदमी ने जिसे
अपने बचाव में
बुन डाला है

6–10–1965

अनुत्तरित मौन

अनुत्तरित मौन
अब भी अनुत्तरित है
दिक् और काल में खड़ा हिमालय
इसका प्रतीक है

13–10–1965

प्रलम्बित खड़े हैं

प्रलम्बित खड़े हैं
बियाबान मौन के पहरुये
दिगम्बरी रहस्य की चाँदनी ओढ़े पेड़

14–10–1965

आवरण है

आवरण है
और नहीं भी है
निरावरण दृष्टि चाहिए
निरावरण देखने के लिए

14–10–65

जो खुल गया है

जो खुल गया है
बिना खुले
उस देह का विदेह
मैंने देखा।

25–10–1965

मैंने देखा

मैंने देखा
दिन का शीशा :
मुझेस बड़ा
पककर
खड़ा है मेरा बोया
अनाज
बड़ा खुश हूँ मैं आज

25–10–1965

पहाड़ पर खड़ी है

पहाड़ पर खड़ी है
नीलाम्बरी लौ
अंधकार इससे हारा
घाटियों में कराहता है

25–10–1965

गंध में उड़ रहा गुलाब

गंध में
उड़ा रहा गुलाब
निर्बन्ध बने रहने के लिए
प्राण से मिलकर
प्राण में बने रहने के लिए
रहस्य की बात रहस्य से कहने के लिए

13–12–1965

बाहों में बँधी वह

बाहों में बँधी वह
पुलक से पराजित हुई वह
चुम्बन–चकित
जय में जी उठी वह
पूर्ण–यौवना
मेरी प्रेयसी :
मुझे छोड़
गयी, सूर्य को
खिले कमल का अर्घ चढ़ाने

30–4–1966

विद्वान अँधेरा

विद्वान अँधेरा
ढपोरशंखी सूर्य
दोनों हमारे हैं
और हम
उनके सहारे हैं
थके हुये
हारे हैं

27–7–1966

मैं उसे खोजता हूँ

मैं उसे खोजता हूँ
जो आदमी है
और
अब भी आदमी है
तबाह होकर भी आदमी है
चरित्र पर खड़ा
देवदार की तरह बड़ा

31–10–1966

जीकर भी

जीकर भी
न जीने की संज्ञा से
जी रहा हूँ मैं।

बह रही नाव के हाथ थामे
प्रवाहित जल पर
अप्रवाहित खड़ा हूँ मैं।
मेरे अस्तित्व को
निगल गया है
अनस्तित्व का बोध
अशून्य से शून्य हो गया हूँ मैं।

कुछ हूँ
और नहीं भी हूँ
शायद मैं यहीं कहीं हूँ
जहाँ नहीं हूँ
खोज में
खोजने वाले की खोया।

मौत जी रही है मुझे
जिन्दगी के साथ
अपनी जिन्दगी में

31–10–1966

न इश्क न हुस्न

न इश्क
न हुस्न
गये हैं दोनों बाहर
अवमूल्यन में
कर्ज चुकाने

28–2–1967

सेब में घुसा चाकू

सेब में घुसा चाकू
देश में घुसा हाथ
विदेश का
खूनी,
कातिल!

28–2–1967

तरबूज

तरबूज
प्लेट में कटा धरा है
हलाल हो गयी आग
हरे सूर्य की
पेट में पहुँचने से पहले

28–3–1967

सुबह फक है

सुबह फक है
रोशनी गफ है
आदमी को शक है
सुबह न होने का
रोशनी न होने का

28–7–1967

चरित्र सब चालते हैं

चरित्र सब चालते हैं
अपनी चलनी में
सोना निकालने के लिए

मिट्टी निकलती है मिट्टी
सोने के भाव
न बिकी

14–9–1967

ज्यामितिक जीवन

लकीर ने लकीर को खा लिया
ग्रहण में केन्द्र और
वृत्त में अँधेरा है
—अमावस है
केन्द्र अब अंधा है
बंदी है
विन्दुओं के वृत्त में अकेला है
न व्यास—
न अर्धव्यास
केन्द्र में नथे
बिन्दुओं को नाथे है
बाहर नहीं—
वृत्त के भीतर है दुनिया
समय की,
न कुछ अलग है
अतीत,
न वर्तमान,
न भविष्य
वृत्त का स्वामी केन्द्र
नपुंसक है
विन्दुओं का वेद
हिंसक है

17–10–1967

मौत को पढ़ रही है जिन्दगी

मौत को पढ़ रही है जिन्दगी
जो मर गयी है
अमेरिकी अनाज पाकर
कर्ज का जॉज बजाकर

19–10–1967

कर्ज का पहाड़

कर्ज का पहाड़
बड़े से बड़े मर्ज से बड़ा है
न मरा आदमी
पहाड़ से मरा पड़ा है

19–10–1967

है

है
क्या नहीं है
समय की चाल में अब
जो अतीत में चल रहे हैं सब
बे-ढब,
दब-दब?

20-10-1967

चिलम में उगा

चिलम में उगा
नशे का पेड़
जड़ में आग
सिर में धुआँ

21-10-1967

सब से जुदा

सब से जुदा
न आदमी है आदमी
न आदमी है खुदा

22–10–1967

नंगा न हुआ आदमी बुरा हुआ

नंगा न हुआ आदमी बुरा हुआ
आदमी को खा गया आदमी का लिबास

26–10–1967

मैं हूँ

मैं हूँ
मांस-पिंड में बँधा
अपनी जेल
कोई दूसरी नहीं है मेरी जेल

9-11-1967

आग लेने गया है

आग लेने गया है
पेड़ का हाथ आदमी के लिए
टूटी डाल नहीं टूटी

29-12-1967

न धूप को है

न धूप को है
न और को है
अपना एहसास
मगर है
जैसे नहीं है
आदमी के पास
आदमी की शक्ल
आदमी का बोध
आदमी की अक्ल
उसका अस्तित्व
सपाट है—

सपाट
नदारद अस्तित्व का
अनंत सुनसान

27-1-1968

न डूबे हैं

न डूबे हैं
जहाँ
न डूबते हैं
वहाँ डूबते हैं
और डूबे हैं
हम और हमारे जहाज
रेत के सागर में

3-3-1968

दल बदल बादल

दल बदल के
बादलों का छल खुला
जल मिला तो वह मिला
विष से घुला

11-3-1968

सिर के अंदर

सिर के अंदर
शहर पिट गया है
पेट के अंदर
पुरुष पिट गया है
पाँव हैं
कि पहाड़ के तले दबे हैं
हाथ हैं
कि कैद काट रहे हैं।

11–3–1968

नदी

नदी है
अब भी है
तट के पास
तट से सटी

2-4-1968

नदी में डूबे नगर के पाँव

नदी में डूबे
नगर के पाँव
पानी हो गये
न पाँव हैं
न पाँव के चिह्न

2-4-1968

न देखा था मैंने देवदार

न देखा था
मैंने
देवदार
तुम
आये
और दिख गया मुझे
दृढ़ स्तम्भ पेड़
मेरी आँखों में खड़ा
अटूट आस्था से
हो गया
बड़ा
दिन
हो गया
इंद्रियों के अन्दर
सिन्धु
पा गया
सूर्य को
पानी के अस्तित्व में
मैं और कविता
जी भर बटोरते रहे
धूप का धन
एक साथ
एक साथ जीने के लिए
खुलकर बंद हो गयी
चिरौंटे की लाल चोंच
और तुम
आये और गये हो गये

[डॉ० रामविलास शर्मा के बाँदा आने पर]

19-3-1968

मकान ने कहा मकान से

मकान ने कहा मकान से
दुकान ने कहा दुकान से
आदमी चोर है

6–4–1968

अब आज

अब
आज
निकल आयीं कोपलें
जिस्म में–
साठिया पीपल के,
जेठ के जुल्म में
जमीन पर जो नहीं गिर पड़ा

13–5–1968

खफ्त है मुझे आदमी होने का

खफ्त है मुझे
आदमी होने का
बेखफ्त आदमी
साँड़ है
सियार है
पेट भर लेता है
नेता है

19–7–1968

खबर है कि वह नहीं है

खबर है
कि वह नहीं है
उसकी बुझी लालटेन
दर्द के हरे पेड़ पर टँगी है
खबर है
कि वह नहीं है
आदमी के सफर में
आदमी के साथ
समय की सतर में
[श्री गंगाप्रसाद पांडेय के निधन पर]

10–8–1968

सिर के ऊपर

सिर के ऊपर
उड़ गये
तुम्हारे उड़ाये कबूतर
अनंत आकाश में
अपना अस्तित्व खोजने के लिए

जमीन का जंगल
जमीन में खड़ा रहा
विकल
लाचार;
न मिले कबूतर—
न हुआ सजीव

न उठा जल
न जल का जुलूस
लान की घास
खरगोश कुतरते रहे
न कुछ हुआ
न कोई चौंका

15–8–1968

कल की किताब

कल की किताब
आज का सूरज
नदी के साथ पढ़ रहा है
व्यंग और विद्रूप का शोर
कगार पर चढ़ रहा है

स्तम्भित खड़ा है
अतीत का हठी पुल
जमीन पर
वर्तमान पैदल चल रहा है
भविष्य की खोज में
इस एक पुल पर

जल का बहाव तटस्थ है
अब भी
आदमी पार उतरते हैं
डगमग डोंगियों में

दृश्य के भीतर
अदृश्य का आईना
काँपता है
काँपता आईना भूडोल है

21–10–1968

मच्छर

मच्छर
बजाते हैं
समय का सितार
अंधकार में नाचती हैं
निहंग आदिम प्रवृत्तियाँ
विराट हो रहा है
देश के दिल में संगीत-सम्मेलन
नींद में डूबा
नींद में जी रहा है भैरव
पत्तियाँ पकड़े
पेड़ से टिकी हवा खड़ी है
और
अभी और
आराम का स्वप्न देखते हैं
मुरगे
मौसम
खराब है
घर के भीतर
घर के बाहर
सूरज नहीं
सुबह करता।

2-11-1968

श्री श्रीखंडे के प्रति

(उनके तराशे मूर्ति-फलक के आधार पर)

तुमने
उगाया है सूरज
सीमेंट काटकर–
तराशकर!
बड़ा देदीप्यमान है
दिल से निकला तुम्हारा सूरज
लपट-पर-लपट मारता दिशाओं में!
देखकर डूबने चला गया है
आसमान का सूरज!
दिवाल में दिन हो गया है!
जड़ अब चेतन हो गया है!
न अंधकार कर पा रहा है अत्याचार!
न बादल कर पा रहा है मार!
श्रम का हाथ
सूर्य की ओर गया है
–दुख के सिर से,
सुख के सिर से ऊपर–
उठकर!
न डर है–
न शंका
हाथ से बज उठा है आग का डंका!

अवश्य जलेगी लंका!
पहाड़ का सिर
आँख खोले पड़ा है
रवि का मंडल दृष्टि में गड़ा है!
नय की नारी,
सूर्य के स्वागत में,
कबूतर उड़ाती है!
जय श्रीखंडे!!

4–11–1968

अँगूठा खड़ा है

अँगूठा खड़ा है
असमर्थ अँगुलियों के पास
देश की हथेली का
कुचक्र कुचलने के लिए

ध्वंसावशेष को
घेरकर खड़ी हैं
विचार की बाहें
रंग के फूल राख से उगाने के लिए

समय का दर्शन
यथार्थ में बदला है
क्रांति और शांति के हाथ
अक्षांश और देशांतर बदल रहे हैं

न आँख के धनुष टूटे हैं
न जबान के बान
न व्यक्ति निरस्त्र हुआ है—
न विश्व

12–11–1968

पस्त हो गयी हैं

पस्त हो गयी हैं
हाथ की अँगुलियाँ
गाँठ की पर्त खोलते-खोलते
अँगूठे
अब भी खड़े हैं
संघर्ष में सिर कटाये
आदमी का सिर
और सीना
विध्वंस से बचाने के लिए

25-11-1968

जेब कतरे के उपन्यास

आदमियों के
जेब कतर लेते हैं
बढ़े-चढ़े मूल्यों के उपन्यास
आँख से पढ़कर
दिल और दिमाग से
भोगना पड़ता है संत्रास

26-11-1968

कमासिन–मेरा गाँव

कमासिन–मेरा गाँव
एक पुराना गाँव है!
अतीत में पहले कभी आबाद हुआ होगा
शताब्दियाँ लग गयी होंगी
बड़े होने में–इतना होने में!

निकल न आया होगा
कोई चिरौंटा अंडा तोड़कर
जो बड़ा हो गया होगा जल्दी ही
आठ-दस दिन में
और मेरा गाँव हो गया होगा सहज ही!

न भगवान ने बनाया होगा इसे इस रूप में
एक ही क्षण में
मात्र इच्छा करते ही
और खुश हो गया होगा इसे देखकर
सामने साकार खड़ा

अवश्य ही इसे जन्म दिया है
किसान पुरुषार्थी पुरखों ने
बज्जर जमीन जोतकर
उनका बेटा–मेरा गाँव मुझे प्रिय है।

वन बेधकर आये रहे होंगे यहाँ
अमानवीय जंगल के इस प्रदेश में,
अकड़े खड़े–
लकड़ियों के दानवों से लड़ते,
काँस-कुश-काँटों को
खोदते-उखाड़ते,
राहहीन बाधा से राह को उबारते
नयी दिशा जीवन के यापन की खोजते
और तब
बस गये होंगे यहाँ
साहसिक पुरखे
–आदिम प्रवृत्तियों से प्रेरित,
कृषक-सभ्यता के विकास के लिए।
अपने आवास के लिए।

अब इस शताब्दी में
सामयिक साठोत्तरी में
आये-गये पुरुखों के निशान
न कहीं मिलते हैं–
न शेष हैं
मेरे गाँव-कमासिन में।
न अतीत है–
न इतिहास है–
मेरे गाँव का

वर्त्तमान में–
दिल्ली से दूर–
बहुत दूर–

पीड़ित–
पराजित–
अपमानित और त्रस्त,
भय और भूख
और बीमारियों से ग्रस्त
जी रहा है
मेरा गाँव–कमासिन
टिमटिमाती हुई लालटेन की तरह!

12–12–1968

दाल-भात खा रहा है कौआ

दाल-भात
खा रहा है कौआ
आदमी को खा रहा है
आदमी का हौआ
उड़ा चला जा रहा है
कटा कनकौआ
दूर, नजर से दूर
पराये गाँव,
मर गयी डोर
जमीन पर पड़ी है

27-1-1969

सिपाही का डंडा

सिपाही का डंडा
तोड़ता है अंडा
शांति का दिया हुआ
अंडे से निकल आया
असंतोष
भभक उठा रोष
लहर उठा झंडा
क्रांति का

27–1–1969

कर्ज

कर्ज.....कर्ज.....कर्ज
मारे नहीं मरता है कर्ज
मरता है मारे बिना
आदमी का फर्ज

27–1–1969

गधों के पैने सींग

गधों के
निकल आये हैं
पैने सींग
जमीन और आसमान को हुरेटते हैं
बैल
अब बिक गये हैं
बाजार में,
कुबेर का रथ वही खींचते हैं
उन्हीं की सब्जी सींचते हैं
बेकार हो गये हैं
घाट के धोबी,
खेत के किसान
युगचेता
समय के अभिनेता

27–1–1969

औरत की देह

औरत
की
देह भी
दुआब है
अगल-बगल
रेती है
दूर-दूर
खेती है
नहीं-नहीं
छोटा-सा
जवाब है

31-1-1969

शब्द हो गये हैं नंगे

शब्द हो गये हैं नंगे
अर्थ नहीं खुलते
अनर्थ अश्लीलता
घंटी बजाती है
व्यापक खतरे की

31–1–1969

तू ने जो गरमाई दी है

तू ने जो गरमाई दी है
मुझे, अङ्ग से अङ्ग लगाकर
मैं इसका एहसान मानता हूँ
तुझसे बढ़कर
और किसी को नहीं जानता हूँ।

7–2–1969

कुत्ता, कुत्ता है

कुत्ता, कुत्ता है
आदमी की रोटी छीन ले जाने वाला कुत्ता
सचमुच कुत्ता है
चाहे छोटा हो
या बड़ा
जवान हो या बूढ़ा
गाँव का हो
या शहर का
रंग चाहे जो हो
दुमदार हो
या दुमकटा
या कनकटा
इससे कोई फर्क नहीं पड़ता
कुत्ता-कुत्ता है
आदमी का दुश्मन
गोली मार देने लायक है
न मारना पाप है—गुनाह है
मारना स्वधर्म है,
कुत्ते से आदमी को खतरा है
मरने का!

9-2-1969

यहाँ इस देश में

यहाँ–
इस देश में
जिनका जन्म दो बार होता है
वही सताते हैं उनको
यहाँ–
इस देश में
जिनका जन्म एक बार होता है
पुनर्जन्म इसलिए खराब है
बहुत बहुत सचमुच!

9–2–1969

बीच में खड़ा पहाड़

वही है एक
बीच में खड़ा पहाड़
जिसे काटना जरूरी है
जनतंत्र की सड़क के लिए
इस पार से
उस पार जाने के लिए
अपना अधिकार पाने के लिए

9–2–1969

बढ़ गया है

बढ़ गया है
जीने से ज्यादा न जीना
और आदमी है कि हँसना नहीं भूलता

4–1–1969

हाथ के पेड़

हाथ के पेड़
पेट में डूबे हैं
न फल है–
न फूल
जड़ें उखड़ी हैं।

4–1–1969

देखने को बहुत कुछ दीख रहा है

देखने को बहुत कुछ दीख रहा है
न देखने वाली आँख खुली है
और कुछ नहीं दीख रहा है
देखकर देखना गायब है
सूर्य की अंधी आँख खुली है
न देश दीखता है
न विदेश
न पहाड़ जैसा क्लेश
न चीरता आरा
न पेट भरने का चारा

19–2–1969

दूर कटा कवि

दूर कटा कवि
मैं जनता का,
कच-कच करता
कचर रहा हूँ अपनी माटी;
मिट-मिटकर
मैं सीख रहा हूँ
प्रतिपल जीने की परिपाटी
कानूनी करतब से मारा
जितना जीता उतना हारा
न्याय-नेह सब समय खा गया
भीतर बाहर धुआँ छा गया
धन को पैदा नहीं कर सका
पेट-खलीसा नहीं भर सका
लूट खसोट जहाँ होती है
मेरी ताव वहाँ खोटी है
मिली कचहरी इज्जत थोपी
पहना थोथा उतरी टोपी
लिये हृदय में कविता थाती
मैं ताने हूँ अपनी छाती

2-3-1969

तुम नहीं छोड़ते भोग-सम्भोग

तुम नहीं छोड़ते भोग-सम्भोग
तुमसे बगावत करते हैं लोग
जिधर पड़ती है तुम्हारी छाया
उधर फैल जाते हैं बुरे रोग

6-9-1969

पद का दर्द

दर्द के सिर में
दर्द है पद का
सर्व साधारण से
असाधारण हो गये कद का

9-3-1969

पैसा है मेरा देश

पैसा है
मेरा देश
जो किसी की जेब में है
और
किसी की जेब में
नहीं है

कपड़ा है
मेरा देश
जिसे बुनते हैं कुछ हाथ
और
फाड़ते हैं
बहुत से लोग

12–3–1969

मैं तो एक पहाड़ हूँ

अब तो जलकर
राख हो गया होगा
तुम्हारा धनुर्धर आक्रोश
जिसने मुझे
आहत किया था उस दिन
बाँदा में
बाल-चापल्य-स्वभाव से
बिना जाने मेरे मौन-सन्दर्भ का
इतिहास
जहाँ न कोई ईर्ष्या थी—
न डाह
तुम्हारे प्रति
वरन था स्थानीय टिप्पणियों से
बचने का मेरा अपना
संतुलित दृष्टिकोण
न चाहने पर भी मुझे चाहना पड़ा था
तुमको बचाकर सबसे अलग रखना
मैंने किया भी यही अपने और
तुम्हारे हित में,
जिसे आवेश में तुम न समझ सके
मैं तो एक पहाड़ हूँ
अडिग अपनी जगह खड़ा
सिर पर लिये तुम्हें—
तुम्हारी हरियाली से हरा।

[कृष्णमुरारी पहड़िया को पत्र-भेजा उसके भ्रम निवारण के लिए]

14-3-1969

सब के पास है

सब के पास है
अपनी-अपनी किताब
दिल की बंद,
स्वार्थ की खुली,
कोई नहीं रखता है सच का हिसाब

24-3-1969

रिन

रिन
और रिन
का जोड़ जुड़ा है आजकल
घन
और घन
का जोड़ नहीं जुड़ा आजकल

24-3-1969

हरेक बंद है अपनी गली में

हरेक बंद है अपनी गली में
नाज जैसे फली में
गंध जैसे कली में

25-3-1969

लोग और रोग

लोग
और रोग बढ़ गये हैं
मौत के रजिस्टर में
नये नाम चढ़ गये हैं

7-4-1969

स्वधर्म हो गया है वेतन का बचाना

स्वधर्म हो गया है वेतन का बचाना
ऊपर की आमदनी का पैसा खाना
ज्यादा से ज्यादा नाजायज कमाना
तरह और तरकीब से पकड़ में न आना
क्या खूब है जमाना!
बेलगाम दौड़ता है घूस का घोड़ा
रौंदने से इसने किसी को नहीं छोड़ा
बेकार हो गया है कानून का कोड़ा
रोक नहीं सकता इसे कोई रोड़ा
दम इसने कब तोड़ा?

15–4–1969

हमने बनाई एक चिड़िया

हमने
बनायी
एक चिड़िया

सिर ने हिमालय
और दुम ने सागर
छुआ

एक पंख पूरब
और एक पंख पच्छिम
हुआ

पेट से
लगाये यह चिड़िया
अंडा सेती है
कछुए का

24-4-1969

दिल में दिल्ली

दिल में दिल्ली
दिमाग में बिल्ली
खून में शेख चिल्ली
जेब कटी
तब फटी
रोक-थाम की झिल्ली।

24-4-1969

सत्य

सत्य
नहीं टिक पाता
यहाँ
इस जमीन में
जहाँ
टिके हैं
झूठ के अलमबरदार
मौत के सिपहसालार

28-4-1969

हम खो गये हैं

हम
खो गये हैं
अपने पेट में
पैर की सड़कें
पेट की
सड़कें हो गयी हैं
न दिल
न दिमाग
न कान
न जबान

4–5–1969

बूँद से बूँद

बूँद से बूँद
जब अलग है
न नद है
न निर्झर,
न सर है
न सागर,
न कोई है बादल
बूँद है
बूँद
जब बूँद से बूँद अलग है
न सर है
न सागर
न नद है
न निर्झर
न कोई जलधर

न्याय की लकीर

न्याय की लकीर
धनवान के हाथ की
लकीर से मिल गयी है

फुर्र

फुर्र
फुदक
फुर्र
धूप भरा घर
कोई नहीं डर

त्रास हो या संत्रास

त्रास हो
या संत्रास
रोये बादल
या सूखे घास
फिर होगा फिर
बारह मास विकास

ऊँघती है आग

मैं
को
खा रहा है
मैं
अधमरा आदमी
गा रहा है :
भैरवी,
विहाग,
देसराग!
ऊँघती है आग

न पथ है न पंथी

न पथ है
न पंथी
न रथ है
न घोड़ा
विवश है
दिन-रात का जोड़ा

घुन के घाव

घुन के घाव
घुन के घाव
धन्नियों में हो गये
और छत
चू पड़ी जमीन पर
घुस आया भीतर
बाहरी आसमान
खोखला–
खराब
बे अदब,
खिसनिपोर
घर के लोग
घर में दब गये
नीचे
बहुत नीचे
दुहरे दबाव के नीचे
न जी रहे–
न मर रहे लोग
हैं–
सिर्फ हैं
जैसे नहीं हैं

हताहत हो गयी अंधकार की सेना

हताहत हो गयी
अंधकार की सेना
और अब
सीने से लगाये सूरज का तमगा
सामने खड़ा है दिन
जमीन और आसमान खुश है
जवान धूप से।

वह जो है

वह जो है
और नहीं है
इनके बीच में रेखा नहीं है

उत्तरी वियतनाम

यह जो हुआ है
उत्तरी वियतनाम में
नया सूर्योदय
तमाम सूर्योदयों से भिन्न–
और बड़ा है

न अस्त इसकी दिशा है
न इसके बाद निशा है

स्वयंजात यह नहीं–
न आप आया है
दिक् और काल में इसे
आदमी घसीट लाया है
शताब्दियाँ लग गयी हैं इसे लाने में
उत्तरी वियतनाम को इसे पाने में
इसका बोध
अस्तित्व के हरेक बोध में हुआ है
विश्व के विराट व्यक्तित्व के
शोध में हुआ है

सर्वतोमुखी है इसका प्रकाश
अन्धकार के दुराचार का
हो रहा है विनाश

हताहत है इससे
घर और बाहर अमरीका
'लिबर्टी' के असुरों का
रंग हो रहा है फीका

आहत भी आहत नहीं है
उत्तरी वियतनाम
अमर है इसका संघर्ष
अमर है इसका नाम

नदी अब भी जवान है

पत्थर
घिस गया
कगार का
नदी
अब भी जवान है।

अकेला पहाड़,
शताब्दियों का बोझ
उठाये खड़ा है;
सिर के पेड़
तालियाँ बजाते हैं।

जमीन का जमाना नहीं बदला।

आकाश
गिर पड़ा है
नदी में।
गोद में लिये उसको
बेखबर है नदी
सूरज-चाँद-सितारों से।

मौत जी रही हैं मछलियाँ
बहाव के पानी में।

सूर्यास्त जा रहा है
रात के घर
सुनहरा जाल लिये,
एक भी न पाकर जीती मछली।

आज का दिन
कौड़ियों-सा पट्ट पड़ा है :
दाँव हारा सूरज
हथेलियों में छिप रहा है

मेरे जूते में
उग आये हैं
बबूल के पेड़।
कोई उठाये है मुझे ऊपर
मेरी जमीन से।
देखते पखेरू
नहीं देखते मुझे
झोंक में जी रहे बिना जिये।

आग
जल रही है
किताबों में
लपालप!
कागज नहीं जलता!
हाथ में उठाये किताब सूरज की
आदमी
अँधेरे में बैठा है।

बकरे बोलते हैं
चाकुओं की सदारत में
सलाम ठोंकते।
प्यासा आदमी
कब्र से उठा
खून के इन्तजार में खड़ा है।

आग का आईना

आग का आईना है
नाराज पेरिस
जहाँ देखो : आग
जिधर देखो : आग
आग की भीड़
और आग की दौड़
न आईने में दगाल है
न दगाल में आईना
आग का शहर
आग के पहियों पर
चल रहा है
सार्त्र के साथ
अब पेरिस खूबसूरत
लग रहा है
सूर्य का मुँह पेरिस
समय का मुँह है
दुनिया देखती है अपना मुँह
पेरिस के मुँह में,
अपना सूरज
पेरिस के सूरज में।

केदारनाथ अग्रवाल
का रचना संसार